# पूज्य श्री लालचंदभाई के प्रवचन
# भिण्ड शिविर ता. ०५-०४-१९८९
# श्री समयसार, गाथा १३ प्रवचन- P०६

यह श्री समयसार परमागम शास्त्र है। उसका जीव नाम का प्रथम अधिकार में १३ नंबर की गाथा वो चलती है। उसका स्वाध्याय चलता है। आचार्य भगवान अनादि काल से जो अज्ञानी प्राणी का लक्ष पर ऊपर है, स्व ऊपर, यानी अपने पर लक्ष ज्ञायक ज्ञानानंद आत्मा पर लक्ष आता नहीं है, तो जहाँ तक निमित्त का लक्ष रहता है, तहाँ तक नवतत्त्व की उत्पत्ति हो जाती है। और नवतत्त्व की उत्पत्ति होने से अपना शुद्धात्मा उसमें तिरोभूत हो जाता है। होने पर भी दिखाई नहीं देता है। नवतत्व की उत्पत्ति कैसे हो और उत्पत्ति होने पर भी उससे भिन्न आत्मा कैसा है और कैसे, कैसे यह दृष्टि में आ जावे? बात तो मैं तो मेरी भाषा तो गुजराती है ऐसी हिंदी भाषा तो है नहीं, जो आप सबको----

मुमुक्षुः- तत्त्व सबको समझ में आती है।

उत्तरः- हाँ, नहीं तो छूट मिले तो मैं गुजराती में बोलूँ!

आहाहा! बाह्य द्रव्यदृष्टि से बात आ गयी। अभी एक दूसरी बात आचार्य भगवान समझाते हैं। अपन तो आचार्य भगवान को सुनने के लिये इधर इकट्ठा हुए है। यह लालचंदभाई को सुनने के लिए ये मुमुक्षु नहीं आये है। आचार्य भगवान क्या फरमाते है कि शास्त्र में आत्मा का स्वरूप क्या है? शास्त्र में पर्याय का स्वरूप क्या है? शास्त्र में त्रिकाली उपादान का स्वरूप क्या है और उसका लक्षण क्या है? और शास्त्र में क्षणिक उपादान का स्वरूप क्या है और उसका लक्षण क्या है? और आगम में निमित्त के लक्ष से नैमित्तिक अवस्था होती है, इसका स्वरूप क्या है और उसका लक्षण क्या है? ऐसी कई बात गूढ़ भाव यह परमागम शास्त्र में सब भरा है। इसका अर्थ नहीं समझ में आये ऐसा नहीं है। क्यों कि अपने लिये यह शास्त्र की रचना की है। मुनि के लिये नहीं है। ज्ञानी के लिए भी नहीं है।

केवल अनादि का जो अज्ञानी जीव है, अप्रतिबुद्ध है यानी जिसको आत्मा का बोध नहीं हुआ है, आत्मा का ज्ञानभान नहीं हुआ है उसके लिये यह समयसार शास्त्र की रचना की है। नियमसार शास्त्र को तो अपनी भावना के लिये बनाया। मगर समयसार शास्त्र तो अनादिकाल का अज्ञानी जीव अपने स्वरूप को समय-समय भूल रहा है, ऐसे अज्ञानी जीव को समझाने के लिए इस शास्त्र की रचना हो गई है। तो इसमें एक प्रकार दूसरा बताते है|

**इसीप्रकार अंतर्दृष्टि से देखा जाये तो** यानी बहीरदृष्टि से देखो तो नवतत्व दिखता है, मगर अंतर्दृष्टि से देखो तो:-- **एक ज्ञायकभाव जीव है**। बहीरदृष्टि से भेद दिखता है, निमित्त दिखता है, पर दिखता है, राग दिखता है, पर्याय दिखती है, गुणभेद दिखता है। वो सब बहीरदृष्टि का कार्य है। अंतर्दृष्टि का कार्य तो अंतर्दृष्टि से देखा जाये तो, ये शर्त; अंतर्दृष्टि से देखा जाये तो, तो लिखा है, समझे? उसमें पुरुषार्थ है। अंतर्दृष्टि से देखा जाये तो ज्ञायकभाव जीव है। आहाहा! अकेला ज्ञायक भाव जो अनंतगुण का


Version 2: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

पिण्ड है, इसमें ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सुख, वीर्य, प्रभुत्व, विभुत्व आदि अनंत अनंत अनंतगुण शक्ति अंदर में है। एक-एक गुण बेहद सामर्थ्य से भरा है, छलोछल!

ऐसे अंर्तदृष्टि से देखा जाय तो, यानी बहीरदृष्टि इन्द्रियज्ञान को देखना, इन्द्रियज्ञान से देखना यह बहीरदृष्टि है और क्योंकि इन्द्रियज्ञान जानने का साधन नहीं है; क्या कहा? आत्मा को जानने के लिए इन्द्रियज्ञान साधन नहीं है। क्योंकि वह अपनी जात का परिणाम नहीं है। आत्मा तो अतीन्द्रिय ज्ञानमयी है अनादिअनंत। जो जिसको ज्ञायक भावका दर्शन करना हो तो अंतर्दृष्टि से वो होता है। और अंतर्दृष्टि से देखने से क्या दिखाई देता है अंतर में? के एक ज्ञायक भाव जीव है। यह नवतत्व जीव नहीं है, सचमुच तो अजीव है। वो अजीव का विस्तार है। वो आचार्य भगवान ने परमागम में सब बात अजीव अधिकार में कही है। अजीव अधिकार जीव से भी ऊंचा है। अरे! यह क्या? जीव का स्वरूप अस्ति से कहा और अजीव का स्वरूप नास्ति से परन्तु जीव का स्वरूप ही कहा, जीव बताना है अजीव बताना (नहीं है)।

क्या कहा? अजीव का जो स्वरूप लिखा, तो सब १४ गुणस्थान, मार्गणास्थान, जीवसमास यह सब पुद्गलमय परिणाम हैं भैया! पुद्गलके संग से उत्पन्न हुआ तो यह निश्चयनय से तो ये पुद्गल का भाव है। यानी जीव का विस्तार कभी होता ही नहीं है। विस्तार होता है, विस्तार करो तो जीव नहीं रहेगा अजीव बन जायेगा।

मुमुक्षुः- वाह! वाह!

उत्तरः- सुरेंद्र भाई!

मुमुक्षुः- हाँ जी!

यह सब शास्त्र की बात में बताता हूँ। अजीव अधिकार है। नास्ति से, नास्ति से भी जीव का स्वरूप बताना है कि यह १४ गुणस्थान है मगर वह जीव नहीं है। जीव उससे जुदा है। तो अजीव है। ऐसे अंतर्दृष्टि से देखो तो ज्ञायकभाव जीव है। जीव एक ही है। जीव का नव स्वरूप नहीं है। वह तो स्वांग है, स्वभाव नहीं है। आहाहा!

अंतर्दृष्टि से देखा जाय तो ज्ञायकभाव जीव है। और जीव के विकार का हेतु अजीव है। जीव का विशेष कार्य, जीव में परिणाम जो होता है परिणाम उसका नाम विकार यानी विशेष कार्य। विकार यानी कषाय नहीं, शुभ-अशुभ भाव नहीं। विशेष कार्य। विशेष कार्य में पुण्य-पाप, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष सब विकार है। जीव नहीं है मगर जीव का विशेष कार्य है। आहाहा! जीव के विकार का हेतु, हेतु यानी निमित्त कारण अजीव है। जीव की पर्याय प्रगट होती है। जीव की विशेष कार्य पर्याय प्रगट होती है, वो पर्याय का कारण जीव नहीं है मगर अजीव है। क्या कहा? पुण्य-पाप, आस्रव, बंध उसका कारण तो अजीव है, निमित्त कारण; मगर संवर, निर्जरा, मोक्ष का, उत्त्पत्ति का निमित्त कारण भी भगवानआत्मा नहीं है, अजीव है।

आहाहा! इसमें लिखा है वह पढ़ता हूँ देखोः- **जीव के विकार का हेतु अजीव है**; शास्त्र जिसके पास है आप, आपको शास्त्र देवे। नहीं! अच्छा! इसमें लिखा है **जीव के विकार का हेतु** विशेष कार्य का हेतु (अजीव है)। परिणाम का कारण आत्मा नहीं है। परिणाम का कर्ता तो आत्मा नहीं है मगर परिणाम का निमित्त कारण भी भगवानआत्मा नहीं है। क्योंकि वह नैमित्तिक भाव है। वह स्वाभाविक भाव (नहीं है)।


Version 2: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

आहाहा! उपादान कारण तो नहीं है आत्मा। जीव का परिणाम होता है उसका उत्पादक तो नहीं है। उपादान रूप से तो उपादान कारण नहीं है, यानी कर्ता नहीं है। मगर निमित्त कारण भी आत्मा नहीं है। कर्ता नहीं है, कारयिता नहीं है, अनुमोदक नहीं है और कारण भी (नहीं है)। जहाँ कारण आये वहाँ निमित्त कारण रखना, वांचना, और कर्ता यह उपादान कर्ता। कर्ता अर्थात उपादान कर्ता नहीं है और कारण यानी निमित्त कारण भी नहीं है क्योंकि आत्मा तो अनादि काल का है। जो मोक्ष का कारण आत्मा हो तो मोक्ष होना चाहिए। और कर्ता हो तो सब मोक्ष कर देवे। मगर जीव का अस्तित्व होने पर भी परिणाम का कारण भगवानआत्मा नहीं है। परिणाम का कारण परिणाम है, क्षणिक उपादान और उसका निमित्त कारण अजीव है तो नैमित्तिक हो गया। पहले उपादान से देख बाद में निमित्त के संग से हुआ तो नैमित्तिक हुआ। स्वाभाविक नहीं है पर्याय। स्वभाव तो परम पारिणामिक भाव वाला जीव एक है। वह आत्मा है, जीव तत्त्व है। ऐसा इसमें लिखा है। देखो!

**जीव का विकार का हेतु अजीव है**; हेतु यानी निमित्त कारण यानी आत्मा निमित्त नहीं है। जो आत्मा पुण्य-पापमें शुभ-अशुभ भावमें निमित्त हो तो नित्य कारण पना का दोष आवे, नित्य कर्तापना का दोष आवे। आहाहा! तो कोई किसी जीव को सम्यक्दर्शन ही न होय और मोक्ष भी (न होय)। नित्य पुण्य-पाप रूप ही परिणमन करता रहै। ऐसा है नहीं। **अजीव है**; **औऱ पुण्य-पाप**, **आस्रव**, **संवर**, **निर्जरा**, **बंध तथा मोक्ष**-- **ये जिनके** कारण है **लक्षण है**... **जिनके लक्षण है ऐसे केवल जीव के विकार है** यह पर्याय का लक्षण है। पुण्य-पाप जीव का लक्षण (नहीं है), संवर, निर्जरा, मोक्ष यह परिणाम का लक्षण है। जीव द्रव्य का लक्षण (नहीं है)।

क्या बात समयसार में! धन्नालालजी साहिब! अदभुत से अदभुत बात है अंदर। साफ़ लिखा है के **बंध तथा मोक्ष--ये जिनके लक्षण है ऐसे केवल जीव के विकार है** जीव का विकार यानी जीव के विशेष कार्य का लक्षण है। कोई का लक्षण पुण्य-पाप है, कोई का लक्षण आस्रव, बंध है, कोई परिणाम का लक्षण संवर है, कोई परिणाम का लक्षण निर्जरा है और कोई परिणाम का लक्षण (मोक्ष है)। तो लक्षण भिन्न-भिन्न है। ऐसे जीव का लक्षण भिन्न-भिन्न नहीं है, एक ही लक्षण है। आहाहा!

**और पुण्य-पाप**, **आस्रव**, **संवर**, **निर्जरा**, **बंध तथा मोक्ष विकार हेतू केवल अजीव है**; एक जीव का परिणाम होने पर भी उसका हेतु कारण निमित्त कारण जीव नहीं है। उसका कोई निमित्त कारण होना चाहिये। उपादान कारण तो स्वयं पर्याय है। मगर वह परिणाम जो प्रगट होता है वह जीव के आश्रय से प्रगट नहीं होता है। जीव के कारण से जीव का परिणाम नहीं होता है। परिणाम होता है अपने कारण उसी समय जड़ कर्म सद्भाव और अभाव रूप निमित्त हो जाता है। यानी निमित्त का संग से नव का भेद खड़ा हो जाता है।

निमित्त के संग से मत देख, तो नवतत्व दिखाई नहीं देगा।अंतर्दृष्टि से ज्ञायकभाव का दर्शन होगा| तू निमित्त का लक्ष करता है ना इसलिए नवतत्व तुझे दिखाई देता है। मगर निमित्त का लक्ष छोड़ दे। आहाहा! तो नैमित्तिक पर्याय की उत्पत्ति ही नहीं होगी। तो ज्ञान का ज्ञेय भी नहीं होगा। ज्ञान का ज्ञेय तो भगवानआत्मा बन जाएगा।

सुमतिजी! भाई साहब कहते हैं बहुत सुंदर है, आहाहा! आत्मा के अलावा कोई इस जगत में


Version 2: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

सुंदर है नहीं और एक आत्मा ही शरण है बाकी कोई शरण (नहीं है)।

देव-गुरु-शास्त्र शरण नहीं है तो तेरा कुटुंब कबीला तो शरण कहाँ से आयेगा? आहाहा! परद्रव्य आत्मा को शरण देता नहीं है और आत्मा शरण लेता भी नहीं है। जो पर का शरण लेता है वह अनात्मा है। आत्मा लेता (नहीं है)।

आत्मा तो निरालम्बी तत्त्व है। किसी का अवलंबन आज तक आत्मा ने नहीं लिया। और अभी भी नहीं लेता है। अभी की बात है और भविष्यकाल में अवलंबन लेनेवाला (नहीं है) क्योंकि निरालम्बी तत्त्व है। आहाहा! अवलंबन कौन लेता है? कि सचमुच अजीव, अजीव का अवलंबन लेता है। परद्रव्य, परद्रव्य का अवलंबन लेता है। स्वद्रव्य किसी का अवलंबन लेने वाला (नहीं है)। ये सात तत्त्व के समूह को परद्रव्य कहा है, परभाव कहा है। अध्यात्म का अभ्यास जीव को नहीं। आगम का अभ्यास कर लेवे जिन्दगी पूरी हो जाये। और अध्यात्म का, आहाहा! द्रव्यानुयोग का, आहाहा! मोक्षमार्ग प्रकाशक कर्ता ने लिखा के प्रथम में प्रथम द्रव्यानुयोग का अभ्यास करो। डाक्टर साहब लिखा है?

मुमुक्षुः- जी लिखा है।

उत्तरः- अच्छा! लिखा है तो मानना चाहिए की नहीं?

मुमुक्षुः- मानना ही चाहिये।

उत्तरः- मानना चाहिये! अच्छा! द्रव्यानुयोग का अभ्यास करने से आत्मा स्वच्छंदी होता है कि स्वतंत्र हो जाता है?

मुमुक्षुः- स्वतंत्र हो जाता है।

पराधीन दृष्टि छूट जाती है। स्वाधीन दृष्टि प्रगट होती है। आहाहा! **ऐसे केवल जीव के विकारों और पुण्य, पाप, आस्रव, बंध वह विकार हेतु केवल अजीव है** इधर एक व्यवहार जीव है। व्यवहार जीव और सामने व्यवहार अजीव है। दो व्यवहार है दो ही पर्याय में निमित्त-नैमित्तिक संबंध। निमित्त-नैमित्तिक संबंध परिणाम का पर के साथ होता है। द्रव्य का परिणाम पर पदार्थ के साथ निमित्त-नैमित्तिक है नहीं| आहाहा! आत्मा किसी को निमित्त बनता ही नहीं, आहाहा! और पर पदार्थ आत्मा को निमित्त बनता नहीं है। मैं पर का निमित्त नहीं और पर मेरे में निमित्त नहीं है। आहाहा! निमित्त-नैमित्तिक संबंध व्यवहारनय से पर्याय के साथ पर के साथ होता है, तो नव भेद उत्पन्न हो जाता है। **विकार हेतु ये तो केवल अजीव है। ऐसे यह नवतत्व जीव द्रव्य के स्वभाव को छोड़कर**, आहाहा! क्या फरमाते हैं? कोहीनूर का हीरा है अंदर में, नजर पड़े तो निहाल हो जाये।

ऐसा एक दफे बनाव बना के खेत, खेडू खेडू खेत में जाता था। किसान अपने खेत में जाता था माइल दो माइल तीन माइल दूर, रस्ते में ऐसा विचार उसको आया की, 'अँधा कैसे चलता है?' तो आगे हीरा पड़ा था, तीन हीरा पड़ा था, हैं! आहाहा! एक एक करोड़ पांच पांच करोड़ का एक, कीमती तीन हीरा पड़ा था। रत्न। उस टाइम बराबर उसको विचार आया, उस वक्त की अँधा कैसे चलता है, मैं देखूँ तो सही, प्रेक्टिस तो करूँ, समझे। आँख मींच के चला हीरा पाछल (पीछे) रह गया। बाद में आँख खोली तो कुछ हाथ में आया नहीं।

ऐसे यह शास्त्र का पठन पाठन करने वाला जीव भी जब व्यवहार की बात आती है, शास्त्र में

बहुत आता है जानने के लिए। निषेध करने के लिए है। उपादेय करने के लिए व्यवहार का प्रतिपादन आया (नहीं)। जब व्यवहार की बात आती है एकदम आँख खोलता है, हाँ ये हमारा आया। क्या आया तुम्हारा? मौत आया। और जहाँ यह बात आये की **जीवद्रव्य के स्वभाव को छोड़ कर** नव की उत्पत्ति क्यों होती है? अंतर्दृष्टि से तू देखता नहीं है और बहीरदृष्टि से देखता है, आहाहा! जो एक जीवद्रव्य के स्वभाव को छोड़ कर, वो हीरा कोहीनूर, वहाँ आया, अरे! ये निश्चय का कथन है, छोड़ दिया उसको। उसको (छोड़ दिया) जैसे उसको खेडू ने छोड़ दिया ना किसान ने, ऐसे निश्चय की बात आये के आँख मीच जाता है और व्यवहार की बात जो आये तो घोड़े सवार हो जाता है। आहाहा! आया हमारा, हम भी कहते थे, हम भी कहते थे कि आत्मा परिणाम का कर्ता है और दुःख का भोक्ता है। हम भी कहते थे। ये शास्त्र में लिखा है। आहाहा! भैया! भैया, यह द्रव्यदृष्टि की बात अलग है और पर्यायदृष्टि की बात अलग है।

व्यवहारनय का कथन जिनागम में बहुत आता है मगर उसका फल संसार ही है। शुद्धनय का कथन तो विरल है। क्यांक क्यांक (कहीं कहीं) है। वह कहनेवाला भी विरल ही है। आहाहा!

तो यह आया, जीव द्रव्य के स्वभाव को छोड़कर यानी अंतर्दृष्टि से नहीं देखा। अंतर्दृष्टि से देखो तो ज्ञायक दिखाई देवे, समझा? तो बहीरदृष्टि छूट जाती है। मगर अपना ज्ञायकभाव का स्वभाव का लक्ष छोड़ कर, स्वभाव का लक्ष छोड़कर निमित्त का लक्ष किया **जीवद्रव्य के स्वभाव को छोड़कर स्वयं और पर**, पोते अने पर, परिणाम, परिणाम स्वयं, स्वयं यानी पर्याय पोते पर्याय है। पर्याय को पोते (स्वयं)। आत्मा तो एक बाजु रहा, वह तो परिणाम में आता नहीं है। वह तो परिणाम उसको छूता भी नहीं है। आहाहा! पोते अने (स्वयं और) पर जिसके कारण है। आगे (पहले) आया ना यह जीव का विकार, यह अजीव निमित्त, आया के नहीं? वही स्पष्टीकरण करते हैं कि ऐसी उत्पत्ति क्यों होती है? नवतत्व की उत्पत्ति क्यों होती है? शुभाशुभ भाव की उत्पत्ति क्यों होती है? जन्म क्यों होता है? कि अंर्तदृष्टि से तूने आत्मा को आज तक देखा नहीं और बहीरदृष्टि से देखने से पुण्य पाप की उत्पत्ति होगी और पुण्य पाप मेरा है ऐसी भ्रान्ति भी होगी। आहाहा!

तो **जीव द्रव्य के स्वभाव को छोड़कर**, **स्वयं और पर जिनके कारण हैं**, पर्याय, जीव का विकार परिणाम और उसमें निमित्त, ये नैमित्तिक और वो निमित्त, निमित्त-नैमित्तिक; निमित्त संबंध से देखने से नैमित्तिक भाव खड़ा हो जाता है और आत्मा का स्वभाव देखने से नैमित्तिक भाव की उत्पत्ति होती (नहीं) और परिणाम स्वाभाविक पर्याय की उत्पत्ति संवर की होती है वह भी नैमित्तिक नहीं है स्वाभाविक है क्योंकि वह आत्मा बन जाता है, अभेद से आत्मा बन जाता है। भेद से संवर है, अभेद से तो आत्मा। भेद से देखने से तो वह परद्रव्य है। क्या कहा? संवर, निर्जरा को भेद से मत देख| आहाहा! वो परिणाम भी कथंचित अनन्य होकर आत्मा ही है। **जीव द्रव्य के स्वभाव को छोड़कर स्वयं और पर जिनके कारण हैं** आहाहा! एक नैमित्तिक और दूसरा निमित्त उसमें कहीं स्वभाव नहीं है। निमित्त में भी जीव नहीं आया और नैमित्तिक में भी (नहीं)। आया जीव? हमने तो नहीं देखा। आहाहा! है नहीं कहाँ से दिखाई दे। नैमित्तिक में जीव (नहीं है)। निमित्त में भी जीव नहीं है और नैमित्तक में भी (नहीं है)। है जीव? पुण्य पाप जीवरूप है? आहाहा!

**जिनके कारण हैं ऐसी एक द्रव्य की पर्यायों के रूप में अनुभव करने पर भूतार्थ हैं और सर्व**


Version 2: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

**काल में** एक द्रव्य के परिणाम की नजर करो तो परिणाम है, निमित्त भी है, नैमित्तिक भाव भी है, है! तो भी--अभी आगे आया, दूसरा कोहिनूर का हीरा आया। अभी दूसरा; एक तो आ गया। क्या आया? **जीव द्रव्य के स्वभाव को छोड़कर**, परिणाम अपने अंतर्मुख न होकर बहिर्मुख होता है, निमित्त के संग में चला जाता है परिणाम, तो नवतत्व का भेद खड़ा हो जाता है। और अब दूसरा **स्वयं और पर जिनके कारण है ऐसी एक द्रव्य की पर्यायों के रूप में अनुभव करने पर भूतार्थ हैं और सर्व काल में** परिणाम है, परिणाम है मगर यह जीव का परिणाम कहो, मगर जीव उसको मत कहो। संवर, निर्जरा, मोक्ष को जीव का परिणाम कहो मगर उसको जीव मत कहो। आहाहा! क्योंकि जीव का लक्षण उसमें नहीं है। चेतना लक्षण (उसमें) होने पर भी नित्य चेतना लक्षण नहीं है। और संवर, निर्जरा, मोक्ष में उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक लक्षण होने पर भी परमपारिणामिकभाव लक्षण इसमें नहीं है। और संवर की पर्याय में अनंतगुण भी नहीं है और अनंतगुण वाला तो जीव है। परिणाम जीव (नहीं है)। व्यवहार जीव अर्थात is equal to अजीव है। भेद है ना? अभेद होता तो आत्मा हो जाता है। भेद की दृष्टि छुड़ाने के लिये ये सब बात है।

**अस्खलित एक जीवद्रव्य के स्वभाव के समीप जाकर**, देखो! दूसरा कोहिनूर का हीरा आया, निमित्त का लक्ष छोड़कर अपना द्रव्य स्वभाव की अंतर्मुख दृष्टि से देखने से अस्खलित आत्मा का स्वभाव जो है "शुद्ध चेतना सिंधु हमारो रूप है" अस्खलित अनादि अनंत है, उसमें स्खलना आती (नहीं है)। परिणाम में सुधार बिगाड़ होता है मगर भगवानआत्मा में सुधार बिगाड़ होता नहीं। वो तो अस्खलित है। आहाहा! अनादि अनंत एक रूप जिसका है।

**एक देखिये जानिये रमई रहिये इक ठोर**
**समल विमल न विचारिये यही सिद्धि नहीं ओर**

आहाहा! अस्खलित अपना स्वभाव कभी आत्मा छोड़ता नहीं है। परिणाम भले अपना स्वभाव छोड़कर कषाय आ जाये और बाद में अकषाय भी प्रगट होवे (हो जाये) ऐसी परिणाम में अदल-बदल, वध-घट भले हो मगर भगवानआत्मा तो अघटित घाट है। आ अघटित (घाट है) टंकोत्कीर्ण परमात्मा है। जैसे प्रतिमा है ऐसे चैतन्य प्रतिमा अंदर बिराजमान (है) आहाहा! अस्खलित यानी स्खलना शुद्धता को छोड़ता नहीं आत्मा कभी। कभी शुद्धता को छोड़ता नहीं है। अपने स्वभाव को छोड़ता नहीं है।

**एक जीवद्रव्य के** जहाँ जीवद्रव्य आये वहाँ 'एक' विशेषण लगाते हैं। एक ज्ञायकभाव एक ज्ञायकभाव। आहाहा! **एक जीव द्रव्य के स्वभाव के समीप जाकर** समीप यानी अंतर्दृष्टि से देखने से, अनुभव करने पर, आहाहा! अनुमान करने पर नहीं। क्या कहा? अनुमान में आ जावे उससे क्या फायदा? कुछ फायदा नहीं। आहाहा! ऐसा अनुमान तो अनंतबार किया। मगर अनुभव (नहीं हुआ)। आहाहा! अनुमान मानसिक ज्ञान का व्यापार है। इन्द्रियज्ञान का व्यापार है। भावइन्द्रिय का व्यापार है, भावइन्द्रिय में, मन में अनुमान होता है। ज्ञान में अनुभव होता है। मन का व्यापार परोक्ष है और ज्ञान तो प्रत्यक्ष है। आहाहा! बराबर? अच्छा! बराबर! सबका ऐसा सिर डोलता है। मेरी नजर तो सब पर दूर तक जाती है ना! देखता हूँ।

मुमुक्षुः- काल पका है साहब। काल पका है।


Version 2: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

उत्तरः- हैं! अच्छी बात किया! है? जूना पंडित है, बहुत पुराना। ७९ years old, वो तो शरीर की स्थिति है। आत्मा तो पुराना अनादि अनंत है। आहाहा! काल पक गया है।

मुमक्षुः- वाह! रे वाह!

उत्तरः- वह अपने भाव से बोलते हैं। अपनी बात करते हैं, समझे? मगर साथ साथ दूसरों को साथ में लेते हैं। शादी होती है तो साथ में खाना होता है ना? सब साथ में हो तो ठीक। ऐसे काल पक गया है। काल पक गया है तो यह कुन्दकुन्द की वाणी कान पर आती है। काल पके बिना वाणी (कान पर) आती नहीं है, आहाहा! सही है बात! काल पक गया। आहाहा!

**अस्खलित** भगवानआत्मा के स्वभाव का स्खलन कभी होता नहीं है, ये तो जैसा है वैसा का वैसा सुखसागर, ज्ञानसागर, आनंदसागर, वीर्यसागर, ये तो सागर है। आहाहा! वो तो सागर की उपमा है बाकि सागर की उपमा उसको लागू पड़ती नहीं है। सागर का भी अंत होता है। लोकाकाश तक है। अलोक में तो समुद्र (नहीं है) अकेला आकाश है ना? वह तो लिमिटेड है सागर तो। ये तो अनलिमिटेड स्वभाव है उसका। अस्खलित कभी स्खलित होता नहीं है। परिणाम में मिथ्यात्व तीव्र हो जाये निगोद के जीव में तीव्र मिथ्यात्व परिणाम होने पर भी उसका भगवानआत्मा उसका स्वभाव से भरा है। आहाहा! अस्खलित है, स्खलना होती नहीं है। कभी नहीं होती है उसमें।

**एक जीव द्रव्य के स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर** अनुमान नहीं, अनुभव करने पर यानी अनुभव प्रत्यक्ष है। अनुमान परोक्ष है, समझे? परोक्ष में आनंद नहीं आता है। परोक्ष में हर्ष आता है मगर आनंद (नहीं आता है)। **अनुभव करने पर वे अभूतार्थ हैं, असत्यार्थ हैं।** देखो| नवतत्व दिखाई नहीं देता है। अंतर्दृष्टि से देखो तो ज्ञायकभाव एक दिखाई देता है। अभेद में कोई भेद दिखता नहीं है। वो परिणाम अभेद को देखे। वो परिणाम को, परिणामी परिणाम को नहीं देखता है, परिणाम अभेद सामान्य को देखता है तो वह परिणाम शुद्ध हो जाता है। अपने आप! वो परिणाम भी आत्मा हो जाता है। अनन्य कथंचित,आहाहा! स्पर्शता हुआ भी नहीं स्पर्शता है। आहाहा! यह नवतत्व के भेद, अभेद में भेद दिखाई नहीं देता। अंतर्दृष्टि से अनुभव करने पर मैं कौन हूँ? मैं तो ज्ञानानंद परमात्मा हूँ। मैं पना अपनापना शुद्ध आत्मा में आ जाता है। परिणाम में अपनापना अनंत काल से था उसका क्षय हो जाता है। व्यय हो जाता है। अपनापना गया। परिणाम रह गया मगर परिणाम में अपनापना (चला गया), देखो! परिणाम रह गया और अपनपना चला गया। उसका नाम मोक्ष मार्ग है। उसका नाम वो वीतराग भाव है।

मुमुक्षुः- हटाना किसीको नहीं है इसलिए अकर्ता है।

उत्तरः- हाँ हटाना नहीं है। हाँ हटाना नहीं है इसलिए तो अकर्ता है। जो हटावे तो कर्ता बन जाये आत्मा। आहाहा! उत्पादक भी नहीं है और किसी को व्यय करने का है (नहीं)। ग्रहण करने वाला भी नहीं और छोड़ने वाला भी नहीं, आहाहा!

**इसलिए इन तत्त्वों में** बहुवचन है। तत्त्वोंमें, तत्वोंमें तत्त्व हैं। नवतत्त्वों बहुवचन है उसमें एकवचन तत्त्व विराजमान है। आहाहा! **इन** तत्त्वों में, **नव तत्त्वों में भूतार्थ नय से**, आहाहा! एक दफ़े तुम इन्द्रियज्ञान से देखना बंद कर दो प्रभु! आहाहा! इन्द्रियज्ञान से आत्मा पर को जानता ही नहीं है। पर को जानने के लिये इन्द्रियज्ञान साधन नहीं है। वो भी इसके बाद ३१ गाथा लेने का भाव आया है इसलिये


Version 2: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

उसकी छाय आती है। शरुआत हो गई ३१ गाथा। आहाहा! इन्द्रियों को जीतने से मोह का क्षय हो जाता है। इसप्रकार, इसलिए इन तत्त्वों में भूतार्थ नय से अंतर्दृष्टि से देखो, शुद्धनय से देखो, अतीन्द्रियज्ञान से देखो। इन्द्रियज्ञान से आत्मा दिखाई नहीं देता है, क्योंकि इन्द्रियज्ञान आत्मा की जात नहीं है। वह ज्ञायक का भाव नहीं है वह ज्ञेय का भाव है। रागादि भावक का भाव है और इन्द्रियज्ञान ज्ञेय का भाव है। इसलिए वह ज्ञेय है ज्ञान (नहीं है)। आहाहा!

**एक जीव ही प्रकाशमान है**। आहाहा! नवतत्व कोई दिखाई देता नहीं है तो एकांत हो जायेगा। द्रव्य को भी जानना चाहिए और पर्याय को भी जानना चाहिए। प्रमाण का पक्षवाला है। आहाहा! प्रमाण के पक्ष वाले को परिणाम से आत्मा भिन्न है, उसमें एकांत की गंध आती है मगर सम्यक एकांत की सुगंध उसको आती (नहीं है)।

जीव ही प्रकाशमान है और कोई दिखाई देता (नहीं है)। निर्विकल्प ध्यान जब आता है, शुद्धोपयोग होता है तब अकेला ज्ञायक भाव मैं हूँ ऐसा परिणमन हो जाता है अंदर में, आहाहा! **तत्त्वो में भूतार्थ नय से जीव ही प्रकाशमान है**। जीव ही एव! सम्यक एकांत! आत्मा दिखता है और नवतत्व दिखता नहीं है। क्योंकि एक में अनेक की नास्ति है उसका नाम अनेकांत है। एक में अनेक की नास्ति उसका नाम अनेकांत है, आहाहा! वो प्रमाणवाला अनेकांत अलग है और नय वाला अनेकांत अलग चीज है।

वो अनेकांत प्रमाण का जानने की बात है और इधर तो प्रयोजन की सिद्धि करने के लिए ज्ञायक भाव में प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं है, आहाहा! ऐसे नवतत्व आत्मा में नहीं हैं। एक आत्मा को देखे तो आत्मा ही आत्मा दिखाई देता है। अंदर में गुणभेद दिखाई नहीं देता है। ध्रुव में अनंतगुण हैं, अनंतगुण हैं मगर गुण भेद दिखाई नहीं देता है, तो उत्पाद-व्यय तो कहाँ से दिखाई देगा? क्योंकि उत्पाद-व्यय तो ध्रुव में है ही नहीं। क्या कहा? उत्पाद-व्यय दिखता नहीं है क्योंकि ध्रुव में उत्पाद-व्यय है ही नहीं। हाँ! उसमे अनंतगुण हैं। अनंतगुण हैं मगर गुणभेद दिखाई देता (नहीं है)। जो गुणभेद को जो देखता है उसको आत्मा दिखाई नहीं देता है। आहाहा!

मुमुक्षुः- तो क्या दिखाई देता है?

उत्तरः- अभेद सामान्य चिदानंद भगवानआत्मा दृष्टि में आता है और अतीन्द्रिय आनंदमूर्ति दिखाई देता है। आनंदमूर्ति में हूँ, बस! और कोई दिखाई देता नहीं है। आहाहा! बाहर निकल के ये शास्त्र लिखता है। अंदर में से बाहर आया ने तो दुसरे को समझने की करुणा भी आ जाती है। ऐसा अस्थिरता का भाव होता है ना, यह भी योग्यता। यह भी योग्यता है उसकी स्वकाल में आकर निर्जरा हो जाती है। बंध का कारण (नहीं है)। ऐसा करुणा का भाव भी साधक को आता है, सचमुच तो उसका ज्ञान आता है। वो करुणा का भाव भी निर्जरा का कारण है, बंध का कारण नहीं है। आहाहा!

**इसप्रकार यह**, **एकत्व रूप से प्रकाशित होता हुआ**, आहाहा! एकत्व, एकपना। शुद्धनय आत्मा को एक है ऐसा दिखाती है। **होता हुआ**, **शुद्धनय रूप से अनुभव किया जाता है**। आत्मा का अनुभव तो व्यवहारनय से होता नहीं। इन्द्रियज्ञान से आत्मा का दर्शन होता नहीं। इन्द्रियज्ञान सचमुच ज्ञान नहीं है ज्ञेय है। वो अभी आयेगा ३१ गाथा| आहाहा! **और जो यह अनुभूति है**, जो अनुभूति हुई आत्मा की **सो**

**आत्माख्याति ही है**, आत्मा की प्रसिद्धि है। अनुभूति ने अनुभूति को प्रसिद्ध नहीं किया, अनुभूति ने आत्मा की प्रसिद्ध की, आहाहा! मैंने आत्मा को अनुभूति द्वारा प्रसिद्ध किया तो मेरा कोई टका तो रखो? तेरा कोई टका नहीं है। आहाहा! तूने जो प्रसिद्ध किया शुद्धात्मा, वो ही मैं हूँ। आहाहा! भले तूने प्रसिद्ध किया मगर प्रसिद्ध हुआ तो मैं। प्रसिद्ध कौन हुआ?

मुमुक्षुः- मैं!

उत्तरः- ऐसा लिखा है इसमें।

मुमुक्षुः- अनुभूति द्रव्य बन गई।

उत्तरः- अनुभूति द्रव्य बन गई। अनुभूति पर्याय अब नहीं रही। आहाहा! इसके अलावा क्या चाहिए। जो चाहता था वह हो गया। कार्यसिद्धि हो गई, बस! इतना है। संसार का अभाव हो जाता है। एक समय आत्मा का स्पर्श होता है उसको रिजर्वेशन होता है। सिद्ध परमात्मा है ना? जाना है ना वहाँ, समश्रेणी जाता है आत्मा सिद्धालय में। बुकिंग इधर होती है, बुकिंग। रिजर्वेशन इधर होता है। एक दफे आत्मा का अनुभव हुआ, खलास!

देखो ये ट्रेन में बहुत भीड़ होती है तो तीन महीने पहिले किसी ने रिजर्वेशन करा लिया जेब में है। बाद में कोलाहल (शोर) मच गया कि टिकट नहीं मिलती है, टिकट नहीं मिलती है। वो तो आराम से बैठा है क्योंकि टिकट जेब में है। टिकिट (जेब में है)। कब मोक्ष होगा उसकी चिंता सम्यकदृष्टि करता नहीं क्योंकि टिकट जेब में है।

आत्मा का स्वरूप एक दफे जिसने अनुभव में ले लिया, आहाहा! अल्पकाल में कोलकरार है कि उसकी मुक्ति होने वाली है। स्वकाल में मुक्ति होगी। आहाहा! ऐसा ज्ञान भी उसको है इसलिए जल्दी भी नहीं करता है और प्रमाद में भी नहीं रहता है। जल्दी करे तो कर्ताबुद्धि और प्रमाद में रहे तो आलसी हो जाता है। प्रमाद भी नहीं और उतावल भी नहीं ऐसे मध्यस्थ होकर आत्मा को जानते जानते मस्त रहता है। आत्मा को जानते जानते मस्त रहता है वो तो|

**अनुभूति है सो आत्मख्याति ही है और जो आत्माख्याति है सो सम्यक्दर्शन ही है**। जिसको आत्मा कि प्रसिद्धि ज्ञान में आ गयी, मैं ज्ञायक हूँ तो उसका नाम सम्यक्दर्शन है, **ही है। इसप्रकार यह सर्व कथन निर्दोष ही है - बाधा रहित है**। अनुभूति का नाम ही सम्यक्दर्शन। अनुभूति हुई आत्मख्याति, तो उसका नाम सम्यक्दर्शन है। यहाँ कई तर्क लगाते हैं कि सम्यक्दर्शन लिखा है मगर चारित्र लिखा नहीं। अरे भैया! तीन अंश साथ में जन्मता है - सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चरित्र। मगर मुनिराज के योग्य स्थिरता नहीं है, थोड़ी स्थिरता है। एक कषाय का अभाव हुआ, स्वरूपाचरण चारित्र है। वहाँ तो सम्यक्दर्शन कि मुख्यता है। मिथ्यात्व गया और सम्यक्दर्शन प्रगट हुआ। **इस प्रकार सर्व कथन निर्दोष, बाधा रहित है**।

अभी भावार्थ में थोड़ा ले लूँ। भावार्थ में, अच्छी बात! कई बात अच्छी है, थोड़ा ले लूँ बहुत विस्तार नहीं करूँगा।

मुमुक्षुः- नहीं नहीं विस्तार से लो, भाई कल से ३१ गाथा शुरू करनी है।

उत्तरः- अच्छी कोई बाधा नहीं भले। तो कल से ३१ गाथा सब पढ़कर आवें, ठीक है! सब तो नहीं, थोड़ा थोड़ा पढ़कर आयेगा।

भावार्थः- वो तो आनंद कि बात करता हूँ। मैं डांटता नहीं हूँ। आनंद कि बात करता हूँ। आनंद करते करते ही आनंद प्रगट हो जाता है। आकुलता से आनंद होता नहीं है।

**भावार्थः- इन नव तत्त्वों में**... देखो तत्त्वों है ना बहुवचन तो नव हो गया ना? अचलजी| **इन नव तत्त्वों में शुद्धनय से देखा जाए तो** व्यवहारनय से देखो तो नवतत्व आत्मरूप दिखता है। नवतत्व आत्मा रूप दिखता है। और व्यवहारनय की आँख बंद कर दो और एक शुद्धनय की आँख खोलो तो शुद्धनय से देखा जाय तो जीव ही, ही शब्द ही आया, भी नहीं। सम्यक एकांत का द्योतक है। यह ही है ना, वो सम्यक एकांत का द्योतक है। है तो जीव ही। **एक चैतन्य चमत्कारमात्र** भाव मात्र, **एक चैतन्य चमत्कारमात्र** यानी उसमें नवतत्व का भेद दिखता नहीं है। अभेद सामान्य टंकोत्कीर्ण परमात्मा दिखाई देता है। आहाहा! चैतन्य चमत्कार हो! ये चैतन्य का चमत्कार है। चैतन्य चमत्कारमात्र। मात्र यानी नव दिखता नहीं। ये निषेध करने के लिए मात्र लिखा। एक दिखता है ना, नव दिखता नहीं। इसलिए मात्र शब्द जोड़ दिया। Only, फक्त। एक दिखता है अंतर्दृष्टि से, **चैतन्य चमत्कारमात्र प्रकाशरूप प्रगट हो रहा है**। आहाहा! प्रगट तो था मगर शुद्धनय से देखा (तो) प्रगट हो गया। पर्याय में दिखाई दिया तो प्रगट हो गया। हमको दिखाई दिया, बस! तो प्रगट हुआ। **इसके अतिरिक्त भिन्न-भिन्न**, **इसके** अलावा, **अतिरिक्त** है? आहाहा! नवतत्व कुछ दिखाई नहीं देता। पर्याय दिखाई नहीं देती तो एकांत नहीं हो जाएगा? आहाहा! ये प्रमाण के पक्षवाले का काम नहीं है। हाँ, यह शुद्धनय का पक्ष आवे तो अनुमान तो आ सकता है मगर प्रमाण के पक्ष वाले को शुद्धात्मा अनुमान में भी नहीं आता।

मुमुक्षुः- परम सत्य बात।

मुमुक्षुः- नवतत्व को देखता है वहाँ एकांत नहीं बोलता है|

उत्तरः- हाँ, नवतत्व को देखता है वहाँ एकांत नहीं बोलता है, मगर एक आत्मा को देखोगे तो एकांत हो जायेगा, बोलो! आहाहा! एक कजियारा होता है ना क्या बोलता है? झगड़ालू होता है ना? गुरूदेव दृष्टांत देते थे। गुरूदेव दृष्टांत दते थे - एक पिता को दो पुत्र था। तो तरबूज आया।तरबूज में से दो चीर बनाया पिताजी ने, समझे? माताजी ने बनाया, तो एक चीर तो लम्बी और एक चीर टूंकी मगर बजन सरीखा,दोनों का वजन एकबराबर, समझे? एक का लम्बा ने एक टूंका मगर मोटा, समझे? मगर वजन दोनों का सरीखा। तो माता जानती थी की ये लड़नेवाला एक छोकरा है तो लड़ेगा। इसलिए उसको पहले कहा कि बेटा तू ले ले पहले। क्योंकि झगड़ालू है ना? समजे| तो एक चीर उसने ले लिया, समझे? टूंकी चीर ले लिया। लम्बी चीर रह गयी। तो उसने लम्बी ले ली। हाँ हाँ! मुझको वो चाहिए, ये नहीं चाहिए लम्बी चाहिए तो लम्बी ले; टूंकी चीर उसको दिया, तो नहीं नहीं वो चाहिए। झगड़ा ही करता है। वो झगड़ा ही करता है। अज्ञानी जीव अनादिकाल से उसका कार्य झगड़ा में जिंदगी बीताता है। और यह पर्याय पूरी होकर, आहाहा! कहाँ चला जायेगा वो मालूम होता नहीं है। आहाहा!

**चैतन्य चमत्कार मात्र प्रकाशरूप प्रगट हो रहा है**, **इसके अतिरिक्त** एक के अलावा **भिन्न-भिन्न नवतत्व कुछ भी दिखाई नहीं देते है**। भाई! व्यवहारनय से दिखाई देते हैं ऐसा क्यों नहीं लिखा के व्यवहारनय अस्त हो गई है। व्यवहारनय उदय नहीं हुई अभी। व्यवहारनय का अस्त होता है, तब शुद्धनय का उदय हो जाता है। आहाहा! एक साथ दो का उदय होता (नहीं)। आहाहा! ये तो कोई अलौकिक

समयसार है। समयसार.... भिन्न-भिन्न नवतत्व कुछ भी दिखाई नहीं देता। गौंणरूप से तो दिखाई देते हैं ऐसा तो लिखो? व्यवहारनय से दिखाई देते हैं ऐसा तो लिखो? अरे! दिखाई ही नहीं देता है तो मुख्य-गौण की बात है ही नहीं। तो आँख बंद हो गई, वह आँख, चक्षु सर्वथा बंद हो गई। भेद का लक्ष छूट गया, भेद का लक्ष छूट गया, अभेद का लक्ष आया, तो अभेद ही दिखाई देता है, भेद दिखाई देता नहीं। जिसके ऊपर लक्ष है वो ही दिखाई देता है, जिसके ऊपर लक्ष नहीं है वो होने पर भी दिखाई देता नहीं। आहाहा! अद्भुत बात है डाक्टर साहब! धन्नालाल साहब जूना है। प्रयोजनभूत बात चलती है, आहाहा! अप्रयोजनभूत बात का तो ज्ञान यानी अज्ञान बहुत किया। अप्रयोजनभूत, जम्बूद्वीप कैसा है और महाविदेहक्षेत्र कैसा है और यह कैसा है और यह कैसा है यह मेरूपर्वत कितना है और वहाँ कितना है और भोगभूमि में आयुष्य कितना है और स्वर्ग में आयुष्य कितना है और.... आहाहा! प्रमाण से बाहर चला गया। प्रमाण से बाहर चला गया। आहाहा!

जयपुर में एक दफे कहा उसका पत्र भी आया है। 'अर्चना' का, कल पत्र मिला, भाईसाहब की लड़की जयपुर में छोटी उसका लगन-वगन(शादी) सगपण(सगाई)नहीं हुई था, माता, और पुत्री दोनों बैठी थी। मैं तो जानता नहीं था। व्याख्यान में कहा था कि "प्रमाण से बाहर जाना नहीं अने प्रमाण में अटकना नहीं"। उसने पकड़ लिया तो हमारे रूम पर सब थोड़ा मुमुक्षु तो आवे ने, चर्चा करने के लिए तो बहनो-भाई बैठा था। उसमें उसने कहा कि,'भाई साहब! आपने कहा प्रमाण से बाहर जाना नहीं और प्रमाण में अटकना नहीं', ओहोहो! इतना उसको उत्साह आ गया, आहाहा! आज भी पत्र में वो लिखती है। ऐसे ही कोई पकड़ने वाला तो होता है। वाणी बांजणी (बाँझ) नहीं होती है, ग्रहण करनेवाला होता है। कुन्दकुन्द की वाणी, वाणी ऐसे निकले और कोई ग्रहण न करे?

मुमुक्षुः- ऐसा नहीं होता।

उत्तरः- ये कुन्दकुन्द की वाणी है ना! आहाहा! जिनवाणी है ना! तो दिखाई नहीं देते। जब तक **इसप्रकार**, इसप्रकार एक को नहीं देखता है तहाँ तक **इसप्रकार जीव तत्त्व की जानकारी जीव को नहीं है तब तक वह व्यवहारदृष्टि, पर्यायदृष्टि है**। नवतत्व को जानता है, आहाहा! नवतत्व को जानने से पंडित होता है मगर ज्ञानी होता (नहीं है)। यह छह द्रव्य, नवतत्व को जाना, मगर एक आत्मा को जाना नहीं। तो कुछ जाना? (मुमुक्षुः- नहीं ) मोतीलालजी साहब! आहाहा! एक को जाना सो सबको जान लिया, आहाहा! कुछ बाकी रहता नहीं है। आहाहा!

जब तक इसप्रकार जीव की जानकारी जीव को नहीं है तब तक, लिमिट (limit)। कल तक भले नहीं जाना लेकिन आज जानने में आ सकता है, अभी आ सकता है। उसमें कोई काल दोष नहीं नड़ता है। पंचमकाल नहीं नड़ता है, कर्म का उदय नहीं नड़ता है, देह की, देह में कैंसर होवे तो भी नड़ता नहीं है। निर्धनता नड़ती नहीं है, कम क्षयोपशम नड़ता नहीं है। आहाहा! संस्कृत पढ़ना चाहिए और जयपुर में भर्ती करना चाहिए और उपाध्याय और आचार्य और शास्त्री और आहाहा! कोई जरूरी नहीं है। यह संज्ञी पंचेन्द्रिय मनुष्य जीव चार गतिवाला कोई भी मनवाला प्राणी अपना आत्मा का अनुभव कर सकता है। आहाहा! तब तक वह व्यवहारदृष्टि है। पर को जानने में रुक गया स्व को भूल गया।

**भिन्न नवतत्व को मानता है**। जानता है और मानता भी है। **जीव-पुद्गल की बंध पर्यायरूप दृष्टि**

**से यह पदार्थ भिन्न-भिन्न दिखाई देते हैं**। पर के संबंध से भिन्न-भिन्न दिखाई देते हैं। किन्तु जब शुद्धनय से यानी अंतर्मुखी ज्ञान से, जो ज्ञान बहिर्मुख था, वह ज्ञान अंदर में झुकता है। आहाहा! **तो शुद्धनय से जीव-पुद्गल का भिन्न स्वरूप भिन्न-भिन्न देखा जाए तब वे पुण्य-पाप आदि सात तत्त्व कुछ भी वस्तु नहीं है**। अवस्तु हो गई। वस्तु (मुमुक्षुः- नहीं रही)|आहाहा| (श्रोताःअपने अभेद अखंड स्वभाव में कहाँ है वो?) वो कहाँ है? आहाहा! यह वस्तु नहीं है। **वह निमित्त-नैमित्तिक भाव से हुए थे इसलिये जब वह निमित्त-नैमित्तिक भाव मिट गया** आहाहा! **तब जीव पुद्गल भिन्न-भिन्न होने से अन्य कोई वस्तु सिद्ध नहीं हो सकती**।

**वस्तु तो द्रव्य है**। देखो अभी एक कोहिनूर का हीरा आता है, कोहिनूर का हीरा, भरा है अंदर में, आहाहा! **वस्तु तो द्रव्य है और द्रव्य का निजभाव** द्रव्य का निजभाव **द्रव्य के साथ ही रहता है**। परम-पारिणामिक स्वभावभाव द्रव्य के साथ अनादि अनंत रहता है। और नवतत्व अनादि अनंत साथ में रहता (नहीं है)। संयोग रूप भी नहीं रहता है। तादात्म्य रूप तो नहीं रहता है एक समय के लिए भी, मगर संयोग संबंध भी छूट जाता है। उत्पाद-व्यय संयोग है स्वभाव (नहीं है) आहाहा! ध्रुव स्वभाव है, उत्पाद-व्यय तो आता है और जाता है। 'कोई आवे और कोई जावे में तो जाननहार हूँ'। आहाहा!

**वस्तु तो द्रव्य है और द्रव्य का निजभाव** ये नवतत्व द्रव्य का आत्मा का निजभाव नहीं है। पराया भाव है। आहाहा! परभाव है, परद्रव्य है, हेय है। आहाहा! उसका अर्थ उसमें अपनापन नहीं करना, अपनापन नहीं करना, बस इतना है। **द्रव्य का निजभाव द्रव्य के साथ ही रहता है तथा निमित्त-नैमित्तिक भाव का अभाव ही होता है। इसलिए शुद्धनय से जीव को जानने से ही सम्यक्दर्शन की प्राप्ति हो सकती है**। सम्यक्दर्शन यानी आत्मा का अनुभव हुआ तो अनुभव में जो जानने में आया, वह जानने में आया वही मैं हूँ उसका नाम प्रतीति, उसका नाम सम्यक्दर्शन है। सम्यक्दर्शन की प्राप्ति हो सकती है।

**जब तक भिन्न-भिन्न नव पदार्थों को जाने**, भिन्न-भिन्न, ये पुण्य-पाप हैं, ये आस्रव है, ये बंध है, ये संवर है। इसका यह लक्षण है। उसका यह निमित्त है, उसमें यह निमित्त है। आहाहा! ऐसे ज्ञान को खंड-खंड करता हुआ आत्मा को नाश कर देता है, आहाहा! **जब तक भिन्न-भिन्न नव पदार्थ को जाने और शुद्धनय से आत्मा को नहीं जाने तब तक पर्याय बुद्धि** मिथ्यादृष्टि अज्ञानी रहता है। आहाहा! अभी नवतत्व को जानने का बंद कर दो। आहाहा! और एक शुद्ध आत्मा को अंतर्दृष्टि से देख तो सम्यक्दर्शन होगा और अल्पकाल में मुक्ति होगी।

ॐ